आन्तरिक प्रकाश ही बाह्य प्रकाश है

१ जुलाई, २०२५

आत्मीय पाठक,

‘शुभ गुरुपूर्णिमा माह!’

समय के अनगिनत उपहारों में से एक तो यह अवश्य होगा कि जून माह के बाद जुलाई आता है। यहाँ, श्री मुक्तानन्द आश्रम में जब ग्रीष्म-ऋतु अपने चरम पर पहुँच रही है, ऐसे समय में कम-से-कम मेरा तो यही निष्कर्ष है। हमने अभी-अभी गुरुमाई जी के जन्मदिवस माह का महोत्सव मनाया है। हमने सद्‌गुणों का अध्ययन व अभ्यास किया है। हमने ‘सिंहपर्णी’ के वास्तविक व सुन्दर काल्पनिक फूलों के साथ शान्ति की कामना की है। हम इस पर चिन्तन-मनन करते रहे हैं कि अपने विचारों, शब्दों व कृत्यों में ‘स्पष्टता’ को प्रकट करने का क्या अर्थ है।

मुझे अपनी श्रीगुरु का गुणगान करना, उनका पूजन-वन्दन करना अत्यधिक प्रिय है। यदि मेरे बस में होता तो शायद मैं अगले महीने, उसके अगले महीने और उसके भी अगले महीने आपके साथ यह महोत्सव मनाती रहती। फिर भी, एक तरीक़े से, मेरी मनोकामना पूरी हो गई है। क्योंकि जून के बाद जुलाई आता है—और जुलाई में [या, और भी स्पष्टता से कहें तो भारतीय पञ्चांग के अनुसार आषाढ माह में जोकि अकसर जुलाई में पड़ता है], हम गुरुपूर्णिमा मनाते हैं।

इस वर्ष गुरुपूर्णिमा १० जुलाई को है। इस दिन चन्द्रमा अपनी पूर्ण कलाओं से युक्त हो जाएगा, और उसकी यही परिपूर्णता, सम्पूर्णता व उज्ज्वलता गुरु-शिष्य सम्बन्ध की द्योतक हैं। गुरुपूर्णिमा महोत्सव, जिसका उद्‌भव प्राचीन भारत में हुआ, हमेशा ही मुझे आकृष्ट करता है। इसका एक कारण यह है कि इस महोत्सव का आरम्भ शिष्यों द्वारा किया गया है। श्रीगुरु के प्रति शिष्यों के प्रेम के कारण, श्रीगुरु ने अपने शिष्यों को जो प्रदान किया था, उसके प्रति सम्मान व्यक्त करने हेतु और श्रीगुरु से प्राप्त इन आशीर्वादों के लिए कृतज्ञता अभिव्यक्त करने हेतु ही गुरुपूजन का यह वार्षिक उत्सव मनाया जाने लगा।

आज, युगों बाद, जब हम सिद्धयोग पथ पर गुरुपूर्णिमा के इस पर्व को मनाने की तैयारी कर रहे हैं तो मैं सोचती हूँ कि आज के समय में एक शिष्य होने का क्या अर्थ है। निस्सन्देह, जिस प्रकार श्रीगुरु द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान समयातीत है, उसी प्रकार गुरु-शिष्य सम्बन्ध का सार भी अपरिवर्तनशील है। और इसमें भी कोई नई बात नहीं है कि इस संसार में जीवन चुनौतीपूर्ण है। “वे बीते हुए सुनहरे दिन”

जिन्हें कभी-कभी याद करना हमें अच्छा लगता है, चाहे वे दस, बीस या पचास साल पहले के ही क्यों न हुए हों, शायद हमारी यादों से भी अधिक कठिन और उलझन भरे थे। आख़िरकार मनुष्य का स्वभाव तो हमेशा से एक-सा ही रहा है—यानी यह कि हममें अच्छाई की असीमित क्षमता है, और बहुत आसानी से उससे विचलित हो जाने की दुर्बलता भी है।

जिस समय में हम रह रहे हैं, उसकी विशेषता यह है कि जिन माध्यमों से हम ख़ुद को भटका सकते हैं या भ्रमित कर सकते हैं, उनकी संख्या और जटिलता, दोनों में बढ़ोतरी हो गई है। कितने ही तरीक़ों से, हमारी एकाग्रता कम हुई है—या कम-से-कम इतना तो है ही कि यह बड़ी आसानी से भंग हो जाती है। और जब हमारी सामूहिक एकाग्रता इस तरह बिखर जाती है तो यह बिखराव न केवल विभाजन की ओर ले जाता है, बल्कि कलह को भी जन्म देता है। जब हर कोई अलग-अलग बात कह रहा हो, अलग-अलग चीज़ें सुन रहा हो और अलग-अलग इच्छाओं की पूर्ति पर अड़ा हो तो एक होकर रहना कठिन हो जाता है।

इस दृष्टि से देखें तो मैं और भी अधिक जागरूकता के साथ यह महसूस करती हूँ—और मुझे विश्वास है कि आपमें से कई लोग भी करते होंगे—कि श्रीगुरु द्वारा दिखाए मार्ग का अनुसरण करना हमें प्राप्त सौभाग्य भी है और हमारा उत्तरदायित्व भी। और मैं हृदय की गहराई से इस बात के लिए असीम कृतज्ञता का अनुभव करती हूँ कि मेरे जीवन में *श्रीगुरु हैं*—न जाने भाग्य और सत्कर्मों का वह कैसा योग था और मेरे परिवार के सिद्धयोग पथ का अनुसरण करने की कैसी दूरदर्शिता थी जो मुझे यहाँ, अपनी श्रीगुरु के चरणों में ले आई है।

इस वर्ष, २०२५ में, श्रीगुरुमाई ने हमें नववर्ष-सन्देश प्रदान किया है : *अपने समय को अपने लिए लाभप्रद बनाओ।* जब मैं इस बात पर विचार करती हूँ कि शिष्यत्व का मूर्तरूप बनने का क्या अर्थ है, और गुरुपूर्णिमा के इस माह में मैं अपनी श्रीगुरु का सम्मान सबसे उत्कृष्ट तरीक़े से किस प्रकार करूँ तो मुझमें यह संकल्प सुदृढ़ होता है कि गुरुमाई जी ने मुझे जो कुछ भी दिया है, मैं उसे पूरी तरह से अपने जीवन में उतारूँ। गुरुमाई जी के नववर्ष-सन्देश का पालन करके मैं उस शक्ति का पोषण करना चाहती हूँ जिसे उन्होंने मेरे अन्दर जाग्रत किया है।

एक तरीक़ा जिससे मैं यह कार्य करूँगी, वह है, 'श्रीगुरु-वचन' को दोबारा पढ़ना। 'श्रीगुरु-वचन' में गुरुमाई जी की वे नौ सिखावनियाँ हैं जो उन्होंने दो वर्ष पूर्व गुरुपूर्णिमा माह के अवसर पर प्रदान की थीं। इनमें से हरेक सिखावनी में गुरुमाई जी ने उस विशेष कृत्य के बारे में बताया है जिसके द्वारा हम

अपने समय का सबसे अच्छा उपयोग कर सकते हैं। सिद्धयोग पथ पर हम जो अभ्यास करते हैं, उन सभी अभ्यासों की तरह, इसके प्रभाव भी संचित होते जाते हैं और सार्वभौमिक होते हैं। जब हम समय के साथ अपना सम्बन्ध बदलते हैं व सुधारते हैं तो ऐसा करने से, उसी के अनुरूप अपने आस-पास के लोगों व संसार के साथ भी हमारे सम्बन्धों में बदलाव आने लगता है। हमें एक फ़र्क़ दिखाई देता है, और दूसरे भी इस फ़र्क़ को देख सकते हैं।

***

जब मैं गुरुपूर्णिमा के बारे में और एक सिद्धयोगी होने के नाते अपने लिए इस पर्व के महत्त्व के बारे में विचार करती हूँ, तब एक समय ऐसा आता है जब ऐसा लगता है मानो मेरा मन अपने आप में ही उलझ रहा है। विचार और भाषा विलीन हो जाते हैं और अन्तर में बड़ी प्रबलता से एक मनोभाव उमड़ने लगता है—वह मात्र एक एहसास नहीं, बल्कि उससे भी कहीं बढ़कर होता है। वह प्रेम होता है। वह आदरयुक्त श्रद्धाभाव होता है। वह कृतज्ञता होती है। वह इन सभी का एक अनोखा मिश्रण होता है।

शिष्य होने का एक भाग यह है कि हम इस मनोभाव को अभिव्यक्त करें। क्या आप इससे सहमत हैं? और ऐसा हम इसलिए नहीं करें क्योंकि यह एक नियत अभ्यास है; और न ही इसलिए करें क्योंकि ऐसा करना उचित है। बल्कि, इसलिए करें क्योंकि यह हृदय की स्फुरणा है, हृदय की पुकार है। और जब यह प्रेम, यह भक्ति अन्तर से फूट पड़ते हैं तो इन्हें एक गन्तव्य स्थान चाहिए होता है।

मैंने पहले भी लिखा है कि सिद्धयोग की यह सिखावनी मुझे मोहित कर लेती है कि भगवान, श्रीगुरु और आत्मा एक ही हैं। यह वह सिखावनी है जिस पर मैं अकसर मनन करती हूँ गुरुपूर्णिमा के पर्व के दौरान जो कि श्रीगुरु व गुरुशक्ति का सम्मान करने हेतु समर्पित है। एक ओर, मुझे यह विश्वास ही नहीं हो पाता कि मैं इतनी सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे एक सद्गुरु के दर्शन व उनकी सिखावनियाँ प्राप्त हो रही हैं। यह मेरे लिए हमेशा ही आश्चर्य की बात रहेगी। और दूसरी ओर, यह संसार की सबसे स्वाभाविक बात है! कितनी ही बार मुझे गुरुमाई जी की उपस्थिति इतने क़रीब महसूस होती है जितना कि मेरा अपना हृदय।

ऐक्य की ये झलकियाँ भले ही अत्यन्त अद्‌भुत होती हैं, फिर भी मैं पाती हूँ कि तुकाराम महाराज जैसे भारत के महान सन्त-कवियों ने जो कहा है वैसा मुझे भी महसूस होता है। आत्मज्ञान होने के बाद भी, ये सन्तजन अपने इष्टदेव से प्रार्थना करते हुए यह माँगते थे कि उनके अन्दर अपने इष्टदेव से पृथकत्व का

कुछ भाव बना रहे। वे चाहते थे कि वे अपने प्रभु की आराधना करते रह पाएँ, वे शिष्यत्व के सक्रिय भाव को बनाए रखना चाहते थे।

अतः बात जब उस प्रश्न की आती है जो मैं इस पूरे पत्र में पूछती आई हूँ कि शिष्य होने का क्या अर्थ है और गुरुपूर्णिमा के अवसर पर श्रीगुरु का सम्मान करने का सर्वोत्कृष्ट तरीक़ा क्या है तो इसके अनेक उत्तर हैं। मैंने आपसे श्रीगुरु की सिखावनियों का परिपालन करने के बारे में बात की है, और यह बात भी की है कि जब हम श्रीगुरु के शब्दों का पालन करते हैं तो हम इस बात की प्रत्यक्षरूप से अभिस्वीकृति करते हैं कि वे शब्द हमारे लिए अनमोल हैं। इसके साथ-साथ, हम श्रीगुरुपूजा का भी अभ्यास कर सकते हैं। हम समय नियत कर श्रीगुरु के नाम का संकीर्तन कर सकते हैं, श्रीगुरु का ध्यान कर सकते हैं और श्रीगुरु-दर्शन के अपने अनुभवों को जर्नल में लिख सकते हैं। और हम वह कर सकते हैं जिसे करने की योजना मुझे यक़ीन है कि आपमें से बहुत-से लोगों ने पहले से बनानी शुरू कर दी होगी यानी हम गुरुदक्षिणा के अभ्यास में भाग ले सकते हैं।

***

गुरुपूर्णिमा माह में, हम पूजन-वन्दन करते हैं सिद्धयोग परम्परा के तीनों गुरुओं का : गुरुमाई जी, बाबा मुक्तानन्द [जो गुरुमाई जी के श्रीगुरु थे] और भगवान नित्यानन्द का [जो बाबा जी के श्रीगुरु थे]। इसलिए, यह सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है, उचित प्रतीत होता है कि २१ जुलाई [भारत में २२ जुलाई] को हम श्रीगुरु के सम्मान में एक और मंगलमय पर्व मनाएँगे। और वह है, चान्द्रतिथि के अनुसार भगवान नित्यानन्द की पुण्यतिथि।

बड़े बाबा की पुण्यतिथि वह दिन है जब वे अपनी भौतिक देह का त्याग कर उस परमचेतना में लीन हो गए थे जिससे यह समस्त जगत बना है। यह अवसर हमें स्मरण कराता है कि यद्यपि एक तरह से बड़े बाबा ने इस संसार को त्याग दिया है, तथापि वे अपनी सम्पूर्ण शक्तिसहित यहाँ पूरी तरह विद्यमान भी हैं। वायुमण्डल के कण-कण में उनकी कृपा की स्पष्ट अनुभूति होती है।

उनकी चान्द्र पुण्यतिथि पर चन्द्रमा, घटता हुआ अर्धचन्द्र होगा, प्रकाश की एक फाँक की भाँति, जैसा कि भगवान शिव की जटाओं पर सुशोभित होता है। मुझे यह प्रतीक अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है! जिस पूर्ण चन्द्र के दर्शन हम माह के आरम्भ में कर चुके होंगे, वह बड़े बाबा की पुण्यतिथि पर अब भी अपने मख़मली श्यामल आवरण के पीछे मौजूद होगा। भले ही हमें उसका पूर्ण रूप न दिखे, फिर भी हम उसके प्रकाश के दर्शन अवश्य कर सकेंगे।

भगवान, श्रीगुरु और आत्मा एक ही हैं। आन्तरिक प्रकाश ही बाह्य प्रकाश है। पृथकत्व है ही नहीं, भले ही कभी-कभी ऐसा महसूस होता है और भले ही हम उस पृथकत्व का *रस लेते हों,* क्योंकि इससे हमारी भक्ति और भी अधिक पूर्णता से अभिव्यक्त हो पाती है। यह एक रहस्यमय दृष्टिकोण है, है न? यह गूढ़ दर्शन है, गूढ़ सिद्धान्त है। और, जैसे-जैसे हम सिद्धयोग पथ पर एक-एक महोत्सव मनाते जाते हैं, जैसे-जैसे हमें भगवान का स्मरण करने व उनकी अनुभूति करने का एक नया अवसर मिलता जाता है, वैसे-वैसे हम जिसकी ओर पुनः लौट आते हैं वह सच्चाई भी यही है।

आदर सहित,
ईशा सरदेसाई

© २०२५ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।